राही जी के काव्य में सामाजिक चेतना

डॉ0 रंजू मिश्रा
हिन्दी विभाग,
एम0एल0के0 (पी0जी0)कालेज, बलरामपुर

पं0 देवी प्रसाद "राही" के काव्य की सामाजिक चेतना का निरूपण करने के पूर्व यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि सामाजिक चेतना है क्या। अर्थात सामाजिक चेतना का स्वरूप क्या स्वीकार किया गया है और उसके विषय में सामान्य रूप से लोगों विद्वानों और मनीषियों की दृष्टि क्या हैं कहने का तात्पर्य यह कि कवि भी प्रथमतः एक सामाजिक व्यक्ति होता है और यह भी माना जाता रहा है कि साहित्य या काव्य अपने समाज का दर्पण होता है। डॉ0 श्याम सुन्दर दास ने इस अवधारणा पर बहुत बल दिया है। यह भी निश्चित है कि कतिपय मूल बातों के अलावा समाज की चेतना समय, स्थान और अपने युग की मान्यताओं के साथ बदलती रहती है एक विकसित, शिक्षित एवं सामान्य समाज की चेतना और एक अविकसित, अशिक्षित एवं विपन्न समाज की सामाजिक चेतना में अन्तर आ जाता है। इसी प्रकार स्वतंत्र देश की सामाजिक चेतना और परतन्त्र देश की सामाजिक चेतना में भी अन्तर देखा गया है। जो भी हो हमें यहां सामाजिक चेतना के स्वरूप और साहित्य से भी उसके सम्बन्ध की बात समझ लेने के बाद ही विवेच्य कवि की कविता की सामाजिक चेतना का परिचय पाने में सुविधा होगी।

कवि अपने समाज एवं अपनी संस्कृतिक की मूल्य रक्षा का पहरेदार होता है। "राही" जी उस भारत देश और हिन्दी प्रदेश के कवि हैं जहाँ की सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक मूल्य की संरचना राम कृष्ण और गौतम गान्धी के लोक-मंगल, लोकरंजन, सत्य, अहिंसा, प्रेम, भाई-चारा पर दुःख कातरता के आगे से की गयी थी पर आज कैसा जमाना आ गया है कि उसी समाज का रूप विकृत हो गया है, अपसंस्कृति का प्रसार हो रहा है, सबल-निर्बल का शोषण कर रहा हैं "राही" जी यह सब देखकर दुःखी हैं, हैरान-परेशान हैं और आह भरकर कहते हैं-

'क्या जमाना है कि गान्धी के वतन में
हर कबूतर बाज के मुँह में पड़ा है
और ईशा की तरह हर आदमी-
मुश्किलों के क्रास पर लटका खड़ा है।।"

समाज के प्रति चौकस कवि "राही" के सामने आज दुर्बल संत्रस्त समाज तमाम दोषों का वितण्डावाद झेल रहा है जिसका निराकरण आवश्यक है- अनिवार्य है। सामाजिक समस्याओं का ब्यौरा देते हुये "राही" जी ने यह अपेक्षा की है इनका समाधान खोजना आवश्यक है। इस प्रकार उनकी कविता की सामाजिक चेतना का रुपायन करने वाले जो प्रमुख मसायल हैं उन्हें बिन्दुवार यहां पुरस्सर किया जा रहा है।

<u>जैसे-</u>

(क) गरीबी और अभावग्रस्तता।
(ख) शोषण और अन्याय।
(ग) अपसंस्कृति का प्रसार।
(घ) साम्प्रदायिक विद्वेष।
(ड.) सुविधावादी प्रवंचना।

आगे हम कवि भी काव्यकृतियों के हवाले से इन सामाजिक चेतना से जुड़ी समस्याओं की चर्चा करेंगे।

Scanned with OKEN Scanner

(क) गरीबी और अभावग्रस्तता :

"राही" जी के काव्य की एक सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि वे अपने समय के कवियों में गरीबी और गरीबों के सबसे अधिक मुखर एवं सबसे बड़े गायक हैं। वे गरीबी को स्वाभिमान के साथ, ईमान के साथ स्वीकारने और सत्कारने को तत्पर हैं। जहां अन्य लोग सुख-सुविधा, भोग-विलास से बिगड़ रहे हैं वहां वे रोटी हथियार से भूख के साथ लड़ाई कर रहे हैं। देश के मुखिया जहां देश की तस्वीर बदलने की केवल शेखी बघारते रहे पर गरीबों की टूटी तकदीर को आज तक जोड़ नहीं पाए, वहीं "राही" जी अपने हितों के द्वारा कौम के टूटे हुए टाँको को सिलने में लगे हैं, वे समय के विष का पान विषपायी शंकर के समान करने को तैयार हैं। वे खुद को मिटाकर गरीबों के जीने का हक बहाल करने को तत्पर हैं। "राही" जी गरीबों की जमात तैयार करके उन्हे यह सन्देश देना चाहते हैं कि महलों के हाथों झोपड़ियाँ मत नीलाम करना, क्योंकि इनके तिनकों से ही वे तरकश तीर बनेंगे जो शरमायादारी का महल ढ़हा देंगे। गरीबों का यदि अरमान सुरक्षित रहा तो उनके खून-पसीने जीवन मूल्यों का भुगतान आसान हो जाएगा। मैं यहां उनकी कुछ पंक्तियाँ प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत कर रही हूँ-

"बाधाओं के हाथों गिरवी अरमान न रख देना
मैं खून पसीने से जीवन का मूल्य-चुकाऊँगा।"

"राही" जी समय के पृष्ठ पर "श्रम" की अमर-गाथा अंकित करना चाहते हैं क्योंकि श्रम ही समाज के मूल सृजन आधार है, श्रम संस्कृति ही मानव समाज की असली संस्कृति है। इसलिए उन्हें दुनियावी सुख भोगने के लिए फुर्सत नहीं है। झोपड़ी ही उनकी बहन है, फुटपाथ भाई है, गरीबी माँ है, कर्ज ही बाप है, पीड़ा पति है। मेरा कोई निश्चित घर-आँगन छत छाजन नहीं है। उनकी जिन्दगी, श्रमिकों की जिन्दगी तो दुःखों की राजधानी है।

"झोपड़ी मेरी बहिन, फुटपाथ है बीरन हमारा,
मां गरीवी, कर्ज बापू, दर्द है साजन हमारा
और होंगे वे कि जो रंगरेलियों से घर बसाएं-
मैं दुःखों की राजधानी हूँ मुझे फुर्सत नहीं है।
जी रही हूँ क्योंकि मैं निर्माण की पहली कड़ी हूँ
आदमी की प्रगति बनकर, हर मुसीबत से लड़ी हूँ
मैं समय के पृष्ठ पर, श्रम की कहानी लिख रही हूँ
मैं पसीने की रवानी हूँ, मुझे फुर्सत नहीं है
मैं उजाले की निशानी हूँ, मुझे फुर्सत नहीं है।।"

आज प्रजातन्त्र में श्रमिक और पूँजीपति, सर्वहार और धर्मान्ध के बीच इतना आर्थिक फासला है, इतनी विषमता है कि गरीबों की जिन्दगी के सवाल किसी भी दिन, किसी भी स्तर पर सुलझ नहीं पाते। भाग्यवाद की ओट लेकर मजदूरों का हक मारा जा रहा है जबकि कर्म के सामने भाग्यवाद की कोई भी अहमियत कभी आदमी ने कबूल नहीं की है और आज के वैज्ञानिक युग में तो भाग्यवाद हक की चोरी करने का एक औजार मात्र माना जा रहा है। गरीबों पर रहम की, न्याय की याचना करते हुये कवि "राही" निर्मम पूँजीपतियों से यह निवेदन करते हैं कि गरीबों के पेट की रोटी, उनके बच्चों के हाथों के खिलौने न छीनों, उनके घरौंदे न बर्बाद करो, घृणा मत फैलाओं, गरीबी-अमीरी तो दिन-रात के समान आते जाते रहते हैं।

पूँजीपतियों से प्रार्थना करने वाला यह कवि श्रमिक से विद्रोह का, कर्म की आग जलाने का आह्वान करता है और बताता है कि अब समाज के ठेकेदारों, नेताओं से आशा मत करो, मुसीबत के मारों, मजदूरों घबराओ मत, आंसू बहाकर सतत संघर्ष करते जाओ। यह अश्रु संस्कृति ही मानवीय संस्कृति की आशा है।

Scanned with OKEN Scanner

दिनकर जी ने कभी कहा था-

फूलों पर शबनम के आंसू और अश्रु में आशा।
मिट्टी के जीवन की नपी-तुली परिभाषा।।

"राही" जी श्रमिक समाज में जन्मने वाली इसी वेदनाभोगी सर्जना मूलक अश्रु संस्कृति का बीजारोपण कर्मठता के आधार पर करने का सन्देश दे रहे हैं और समाज में प्रकाशपर्व का आयोजन करते हैं, स्वावलंबन का पाठ पढ़ाते हैं।

कवि की यह गरीबी गाथा उसकी भोगी हुई है, उसने गरीबी को जिया है जो भोगा है उसी का गीतापन किया हैं दुःख तब होता है जब बेचारा कवि "राम हे राम" कहकर दुनिया के बनाने वाले को टेरता हुआ कहता है कि ऊपर से निराला का राजधानी अभिषेक किया जाता है और झोपड़ी में उसे भूखा दफ़न किया जा रहा हैं कवि यह बात शायद हजम कर जाता अगर उसका अपना बेटा बबलू उसी के सामने भूख से तड़प कर रो रहा हो, उसे नींद नहीं आ रही है। ऐसी कई रातें भोगी गयी हैं बिताई गयी है-

"मैं ये चर्चा भी न करता यदि मेरा बबलू
मेरे समझाने पर मुँह बांधकर चुप हो जाता
भूख ज्यादा नहीं, इतनी तो कृपा कर देती
नींद आ जाती उसे, रोता नहीं वो सो जाता।।"

विपन्नता और अभावों को गीत बनाकर गाने की प्रवृत्ति "राही" जी की रचनाओं में व्यापक स्तर पर पायी जाती है। वे दुःख दर्द के मारे उम्मीदों के हारे दिन को फाँसी और रात को कारा समझने वालों का बहलाने के लिए बेगाने है। वे उनके खातिर गाते हैं जिनका हँसना दूभर है, जिनका जीवन असर-बंजर बन चुका है। जिनका धरती-आकाश पर कहीं कोई सहारा नहीं है।

दुःख-दर्दों का मारा हो उम्मीदों से हारा हो,
फाँसी जैसी हो रातें, दिन जिसके हितकारा हो,
हँसना जिनका दूभर हो जीवन बज्जर ऊपर हो
जिसका कोई न सहारा, अंबर या भू पर हो।।"

इस प्रकार "राही" जी ने गरीबी और अभाव के प्रति सामाजिक चेतना को जागृत करते हुए उसे गौरवान्वित किया। उनकी कविता में अभाव एवं गरीबी को जीवन का एक पक्ष मानकर स्वीकारा गया है। हाँ दुःख और क्रोध तो अब होता है जब समाज उस पर सहानुभूति न दिखाकर हँसी उड़ाता है और अभावग्रस्तता तथा गरीबी का दुर्पयोग करने के मनसूबे बांध कर पोशण की राह खोजने लगता है। गरीबी और अभाव पर केन्द्रित कवि "राही" की यही सामाजिक समझदारी है।

(ख) शोषण और अन्याय :

भारतीय प्रजातन्त्र राजा-सामन्त-साहूकार अभिजन का नहीं प्रजा का अभिषेक करने के लिये स्थापित हुआ था। इस देश का राजमुकुट जनता के सिर पर रखा गया था इस प्रजातन्त्र का सही सम्मानीय देवता मजदूर है, किसान मेहनतकश है जो उत्पादन कर रहा है देश को बना रहा है। इसीलिए दिनकर जी ने लिखा था।

"आरती लिए तू फिरे ढूढ़ता मूरख,
मन्दिरों राज प्रसादों में तहखाने में
देवता कही सड़को पर गिट्टी तोड़ रहे,
देवता मिलेंगे खेतों में खलिहानों में।।"

और आज स्थिति और असलियत क्या है। इन्ही देश देवताओं का शोषण किया जा रहा है। भारतीय जनतन्त्र में जन गायब है, उपेक्षित है, तन्त्र पर चोर-उच्चक्के, पूँजीपति, तिकड़मबाज छाये हुये हैं जो जनता की गाढ़ी कमाई और

Scanned with OKEN Scanner

उसका हक मारकर रोज-रोज नई कारें खरीदते हैं लखनऊ-दिल्ली में आलीशान कोठियाँ बनवा रहे हैं। यह सब शोषणातन्त्र और व्यवस्थागत राजनीतिकारों का घोर पाप और अन्याय है इसीलिए "राही" जी को शोषण के खिलाफ आवाज उठानी पड़ी-

"पूरा हिन्दुस्तान उठाकर, कमरे में हटकाने वालों
खिड़की से बाहर भी झांको, हिन्दुस्तान बनाने वालों
मेरा हिन्दुस्तान, तुम्हारे बंगलों के बाहर पलता है
जनता धरती पर चलती है, नेता कंधो पर चलता है।।"

कन्धों पर चलने वाले आज के नेता अपने पिछलग्गुओं और पालतू भेड़ियों के द्वारा जनता का खून पी रहे हैं, विकास की धनराशि हड़पते जा रहे हैं।

विदेशी अंग्रेज शासक सन् 1947 ई0 में चले गये। देश आजाद हुआ। सन् 1950 में देश का संविधान लागू हुआ, फिर जमीदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया। संविधान ने बालिग मताधिकार की एक सौगात जनता को दी।

शोषण और अन्याय अराजकतन्त्र की पैदावार है अराजकता किसी भी शासनतन्त्र या सामाजिक व्यवस्था का कलंक है यह अराजकता साथ नहीं सामान्य सर्वहारा मेहनतकश मजदूर वर्ग को जब शोषण का शिकार बनाती है तो उसमें अवसाद, उपेक्षा दुःख एवं जीवन की व्यर्थता का बोध जगता है। श्रमिक एवं कामगार वर्ग का यह दुःख और अवसाद उत्पादकता को प्रभावित करता है, उत्पादकता का ह्रास होता है। जिससे राष्ट्रीय लाभांश या समाज की आर्थिक शक्ति का ह्रास और क्षरण होता हैं इस प्रकार समाज और राष्ट्र दुर्बल हो जाता है। स्पष्ट है कि शोषण और अन्याय से समाज में नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का पराभव होता है। फलतः सम्पूर्ण समाज अन्त में रूग्ण एवं क्षतिग्रस्त होता है। इस प्रकार शोषण और अन्याय सबसे बड़ा सामाजिक पाप है। यही कारण है कि कवि कलाकार, साहित्यकार ऐसे शोषितों, उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति और सम्मान की भावना की अभिव्यक्ति करते आए हैं।

कवि "राही" भी यही कह रहे हैं-

"जो ठोकर खाकर जीते, हैं पीते हैं आँखों का पानी
कमजोर समझकर जिनसे दुनिया करती है मनमानी
फिर भी हँस-हँस कर काँटो को जो लहू पिलाते हैं
मैं नयन बिछाकर करता हूँ उन चरणों की अगवानी।।"

शोषण का शिकार होने वाले बदनसीब होते है। यह बदनसीबी समाज की देन है सामाजिक चेतना की रूग्णता का परिणाम है सामाजिक शोषण उनकी नियति का निर्धारण कर देता है। ऐसे शोषित अभिशप्तों-गरीबों की दशा का निर्देशन करते हुए कवि "राही" जी ने सामाजिक निराशा और विक्षोभ के गहन अन्धकार में धकेल देते हैं।

सुख से जीना, शान्ति से मरना भी नसीब नहीं है सताये गए लोगों का, वे समाज की कौन सी चेतना की चर्चा करेंगे, क्या गुण गायेंगे और कहेंगे कि वह भी समाज के प्राणी हैं। "राही" जी ने शोषित विपन्नों की यह दुर्दशा दिखाकर मात्र समाज या सत्ता की दुर्बलता का निर्देशन नहीं किया है, उनका तन्तव्य है कि इस प्रकार की विडम्बनाओं का निराकरण होना चाहिए और "राही" जी जानना चाहते हैं कि आखिर वह कौन सा कारक है कि इस प्रकार एक आदमी दूसरे आदमी को आघात पहुँचाता है।

"आदमी का घात यहां
आदमी क्यों करता है,
सूरज से, चन्दा से, अंबर से, तारों से
भीतर से, बाहर से, दर से, दीवार से
पूछ रहा एक प्रश्न छोटा-सा

धरती के दुश्मन से, धरती के प्यारों से,
आदमी का घात यहाँ, आदमी क्यों करता है।"

शोषण सामाजिक स्तर से उठता हुआ राष्ट्रीय परिवेश को विषाक्त करता है और रोका न गया तो शासन सत्ता की सह पाकर यह विश्व मानवता का रक्तपान करने वाला महाभयंकर राक्षस बन जाता है। आज की पूँजीवादी बाजारवाद का भूमण्डलीकरण भी इसी शोषण का एक प्रच्छन्न रूप है।

यही कारण है कि स्वतंत्रयोत्तर युग के भारतीय समाज-विशेषकर उत्तर भारतीय समाज में और उसी के समान्तरण हिन्दी साहित्य में शोषण और अन्याय का स्वर व्यापक और जोरदार ढंग से सुनाई पड़ने लगा। इसी का संक्रमण है "राही" जी के काव्य में प्राप्त शोषण एवं अन्याय का चित्रण। समाज के अगुआ राजनेता ढीले हुए तो नौकरशाही ढीली हुई इस ढील से कानून का राज्य शिथिल हुआ। फलतः व्यवस्था में अराजकता और अन्धकार का धुन्ध छा गया। सामान्य जनता स्वच्छ प्रशासन के लिए तरसने लगी। "राही" जी ने अपने कवि दायित्व का निर्वाह करते हुए किया है:

"नई जिन्दगी की सुबह हाथ में ले
नई रोशनी की फसल काटता हूँ
अँधेरे में भटके हुए राहियों को
बिना दाम के रोशनी बाँटता हूँ
सराबोर जो हो गये आँसुओं से
अंधेरे ने जिनका गला घोंट डाला
नियति की परधि में रहे घूमते जो
प्रगति का जिन्हें मिल न पाया उजाला
XXXXXXXXX
बड़ा कर्ज तुमको अभी पाटना है
उन्हें हौंसला, फैसला, बाँटना है
गिरी रूढ़ियों के सड़े बन्धनों से
कसे पंख अपने न जो खोल पाये
उसी के लिये हूँ न जो बोल पाये।।"

<u>(ग) अपसंस्कृति का प्रसार- एक समस्या :</u>

मानवजाति की सैद्धान्तिक और व्यवहारिक, भौतिक और अभौतिक, पदार्थवादी और प्रत्ययवादी जितनी भी उपलब्धियाँ हैं या उसका दाय और देन अथवा अवदान है उस सब का लक्ष्य मनुष्य है- सभ्यसुसंस्कृत मनुष्य। साहित्य या काव्य भी मनुष्य के प्रसंस्करण की ही एक प्रयोगशाला है। आदमी धरती पर रहता है, धरती को स्वर्ग बनाना ही सबसे बड़ा पुरूषार्थजन्य संस्कार है। आदमी-आदमी की पूजा करने लगे, मनुष्य से सच्चा प्रेम सम्बन्ध जोड़ ले तो फिर उसे और कुछ कमी रहेगी ही नहीं, धरती पर स्वर्ग स्वयं उतर आयेगा। कवि होने के नाते "राही" जी यही कामना करते हैं-

"उसी इन्सान की पूजा रूको तुम आज मैं कर लूँ
तुम्हारी अर्चना के मिस, मनुज की अर्चना कर लूँ।।
मनुज हूँ मैं मनुजता का नया संसार तो रच लूँ
तुम्हारी साधन के मिस, स्वयं की साधना कर लूँ।।"

यही मनुजता का आराध्य रूप तो संस्कार और संस्कृति है। यही तो सामाजिक चेतना की प्रेरणा भी है और उसका परिपाक भी। पर आज के समय की स्थिति क्या है। चिन्त्य यह है जो बहुत गड़बड़ और बेढंगी हो रही है। आज फैल रही

Scanned with OKEN Scanner

है अपसंस्कृति या विकृति जो सामाजिक चेतना की सारी हरियाली चरती जा रही है जिससे सामाजिकता की भूमि पर विसंगतियों की रेत उड़ने लगी है। "राही" जी उसके प्रति भी सजग दृष्टि है।

वही बात आज हमारे समाजिक धरातल पर पारम्परिक व्यवहार में दिखाई दे रही है जो हमारी सामाजिक चेतना की बीमार हालत का बयान करती है। कोयल अप्रिय हो गयी है, बुलबुल दबाई जा रही है, कौआ प्रिय हो रहा है, व्हिस्की की बोतल तरन्नुम पैदा कर रही है। पवित्र नदियों के तट पर बगुओं के भोज आयोजित हो रहे हैं, उल्लू महल की चोटी पर चहकता है, मैना बेचारी पिजड़े में बन्दी बनी हुई। यही हमारी आज की गर्हित सांस्कृतिक झाँकी है जिसे "राही" जी बयान करते हुये दुःखी निराश और उदास हैं-

"कोयल से ज्यादा सुन्दर अब व्हिस्की की बोतल गाती है,
कौओं के जुलूस में अक्सर, बुलबुल दबकर मर जाती है।
रोज सबेरे यमुना तट पर, बगुलों की दावत होती है,
उल्लू चहके मीनारों पर, पिजड़ों में मैना रोती है।।"
ये सांस्कृतिक महोत्सव वाली
सत्य कथन है, ख्वाब नहीं है।

भारतीय समाज में इस्लाम का प्रभावी प्रवेश ईसा की दसवी शताब्दी से देखा जाता है। धीरे-धीरे मुसलमान और हिन्दू भाई-भाई बनकर एक ही भारतीय समाज के अभिन्न अंग बन गये थे। लगभग एक हजार वर्ष भारत की सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक चेतना में इन दोनों की समान हिस्सेदारी थी पर वाह रे मजहब के ठेकेदार और राजनीति के दल्लालों तुमने सब चौपट कर दिया। भारतीय समाज, गांव, नगर, महानगर की रौनक ही बर्बाद करके रख दी। इतनी कटुता पैदा हुई कि देश बंट गया एक समाज एक वतन बँटकर दो टुकड़ों में अलग हो गया। उसके बाद भी आज न पाकिस्तान में और न हिन्दुस्तान में सामाजिक समरता कायम ही नहीं हो पायी है। "राही" जी इस समस्या को ही खूब एहसास करते हैं जो हमारी सामाजिक चेतना के विखण्डन का कारण बन गयी थी। यह भारतीय समाज की अपसंस्कृति का ही परिणाम था।

फुर्र हो गयी सारी रौनक
महानगर के वैभव की,
जगह-जगह ईश्वर-अल्ला के-
हत्यारों को जमघट था।
हिन्दू-मुस्लिम नहीं दोस्तों
मरे सिर्फ इन्सान मरे थे,
जहाँ मरा इन्सान वहीं पर-
गीता और कुरान मरे थे।।
मज़हब के ठेकेदारों ने
ऐसी कसी सियासी फाँसी,
खुद अपने बन्दों के हाथों-
राम और रहमान मरे थे।।
ग्रहण लग गया राजनीति का
वरना ये भाई-भाई
एक दूसरे की पीड़ा को
आगे बढ़कर सहते थे।।

भारतीय समाज का ढाँचा परम्परावादी धर्म प्रधान तो रही ही वह भाषा, धर्म, सम्प्रदाय के विचार से नाना रूपात्मक भी रहा। स्वस्थ सामाजिक चेतना के लिये सब में तालमेल होना आवश्यक था।

(घ) साम्प्रदायिक विद्वेष :

भारत का सामाजिक ढाँचा सामाजिक है। इसमें विगत लगभग एक हजार वर्ष से इस्लाम को मानने वालों का लगातार मिश्रण होता रहा मुगल साम्राज्य के पतन के बाद ईसा के अनुयायी भी भारतीय समाज में प्रविष्ट हुए। जैनी, बौद्ध तो पहले से ही थे। इस प्रकार भारत की संस्कृति और इसकी समाज रचना मिश्र रूप में ही हमारे सामने उपस्थित रही। अंग्रेज कभी भारतीयता को अपना नहीं पाये, जबकि क्रिश्चियन जो भारतीय मूल के थे उन्होंने सामाजिक मिश्रण में थोड़ी बहुत भूमिका जरूर अदा की पर मुसलमान तो अकबर के समय से ही भारत को अपना देश-समाज मानकर यहाँ रच बस गये। इस देश के विकास में मुसलमानों का सांस्कृतिक सामाजिक योगदान मूल्यवान रहा हां अंग्रेजों ने सदा से ही हिन्दू मुसलमानों में खाई खोदी और उसे लगातार गहरी करते रहे। इसी का परिणाम है 1947 में हुआ देश विभाजन। इस कुफल को हम सम्प्रदायिकी की ही देन मानते हैं।

इसीलिए ऐसी विचारधारा वाले लोग साम्प्रदायिकता को एक सांस्कृतिक आन्दोलन का रूप देने लगते हैं। मुस्लिम लीग ने यही किया था और भाजपा और शिवसेना जैसे दल यही कर रहे हैं जबकि प्रेमचन्द्र जी ने यह स्पष्ट बताया था कि "साम्प्रदायिकता हमेशा संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप से निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह उस गधे के समान है जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल के जानवरों पर रोब जमाता फिरता है। हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहते हैं, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अपनी-अपनी संस्कृति को अभी तक अछूती समझ रहे हैं। वे भूल गये हैं कि अब न कहीं हिन्दी संस्कृति है न मुस्लिम संस्कृति न कोई अन्य संस्कृति आज भारतीय समाज की सामाजिक चेतना इसी भ्रम का शिकार बन रही है और वह राष्ट्रवाद के विकास में भी बाधक बनी हुई है।"

आज हमारी सामाजिक चेतना में देश के दो बड़े धर्मों की यही भ्रमात्मक स्थिति एक अभिशाप बनी हुई है। इसके ऊपर जाँति-पाँति के झगड़े-रगड़े, अगड़ा-पिछड़ा का प्रपंच, कुल मिलाकर आज हमारी सामाजिक चेतना खण्डित एवं दुर्बल हो गयी है। कवि "राही" इसीलिए दुःखित हैं और भारतीय सामाजिकता को आगत विकार वाली आज की सामाजिकता के साथ जोड़ कर देखते हैं-

ईद और होली-दीवाली
    सब की होती थी मनचाही,
सब मिलते थे बड़े प्यार से
    साथ-साथ डाले गलबाँही।।
देशद्रोहियों की साजिश ने
    जाने कैसा जहर बो दिया,
आग लगाती घूम रही है-
    जगह-जगह मज़हबी तबाही।।
तार-तार हो गयी एकता
    मज़हब के नाखून से,
कोई मरे जिए क्या मतलब-
    अपना काम निकल गया।।"

इसलिये "राही" जी जोरदार शब्दों में मन्दिर-मस्जिद, हिन्दू-मुसलमान की अलगाववादी चर्चा करने पर ही मुनादी करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

इसी के साथ वे मातृभूमि के प्रेम के सामने मजहब, जाँति-पाँति की दूरियाँ मिटाने की सलाह देते हैं और ईश्वरीयता या खुदाई की व्यापकता को सम्मान देते हुए भी उस की समझारी के लिए इन्सान बनना प्रथमतः आवश्यक मानते हैं यही विचार हमारी सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना को सुसंगठित एवं बलवान बना सकता है।

बन्द करो, मन्दिर-मस्जिद की
    दुःखद कहानी बन्द करो,
हिन्दू-मुस्लिम के रिश्तों की
    गलत बयानी बन्द करो।।
बन्द करो मज़हबी सियासत
    की, हैवानी बन्द करो,
देशद्रोहियों मातृभूमि से-
    नकम हरामी बन्द करो।।
जिस धरती पर जन्म लिया है
    उसका कर्ज़ चुकाओ तो,
जाँति पाँति के घृणा द्वेष को-
    दिल से जरा मिटाओ तो
घर-घर में अल्लाह मिलेगा
    कण-कण में भगवान मिलेंगे,
हिन्दू-मुस्लिम से पहले-
    खुद को इन्सान बनाओ तो।।,

हिन्दू-मुस्लिम और मन्दिर-मस्जिद के झगड़े ने पूरे भारतीय समाज को हिलाकर रख दिया है जिसका खामियाजा आज भी हम भोग रहे हैं। सामाजिक चेतना के विकारों और तज्जन्य तमाम समस्याओं को यथार्थ का चित्र खींचने वाला समाज में प्यार और सहानुभूति के गीत सुनाने वाला कवि जब समाज के शत्रुओं की फरेबी चाल से ऊब जाता है तो वह विद्रोह पर उतर आता है, इन्क्लाब का नारा देता है। बिना क्रान्ति के विद्रोह के, संघर्ष के समाज की सच्ची स्वस्थ चेतना पुनः प्रतिष्ठित कर पाना संभव ही है अन्यायियों के खिलाफ बगावत करना तब फर्ज बन जाता है। और कवि कहता है-

"बड़ी अबेर हो गई
उठो सबेर हो गई,
दबे रहो न रात से
झपट लो सूर्य हाथ से
        ये वक्त की पुकार है
        अभी कहां बहार है,
        चमन के शूल बीन लो
        खिज़ाँ से फूल छीन लो,
बुलन्द इन्कलाब हो
सवाल सा, जवाब हो,
हर एक को गुमान है
तुम्ही पे इत्मीनान है।।"

Scanned with OKEN Scanner

(ङ.) सुविधावादी प्रवंचना :

समाज का सम्यक विकास और संचालन तभी सहज रूप में होता है। जब जाति-पांति, मजहब, सम्प्रदाय को अपनी सीमा में जीते हुए हम एक-दूसरे की सुख-सुविधा का ध्यान रखते हैं। ऐसा न करके हम जब सामाजोन्नय के स्रोत एवं साधन को मात्र अपनी पद-प्रतिष्ठा, अपनी सुख-सुविधा के लिए समेटने लगते हैं तो सामाजिक समरसता खण्डित होने लगती है और सामाजिक चेतना की चकम गायब हो जाती है तथा ऐसा व्यक्ति स्वयं भी नष्ट ही हो जाता है यही उपदेश कामायनीकार प्रसाद जी ने आदि नारी श्रद्धा के माध्यम से आदिमानव मनु के समक्ष रखा था-

"अपने में सब कुछ भर कैसे मनुज विकास करेगा।
यह एकान्त स्वार्थ मिथ्या है अपना नाश करेगा।।
औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो जग को सुखी बनाओ।।"

सामाजिक समरता की रसधारा सोखने के लिये सुविधावादी लम्पट नाना बहाने खोज लेते हैं। "राही" जी ने इसका खुलासा करते हुए बताया है कि ईमान वेचकर रोब-रूतबा गालिब करने वाले ऊपरी वाहवाही के लिए खुद को बेचते फिरते हैं। कपटाचार की प्रदर्शनी लगाते हैं, जाली विज्ञापन देकर भोली-भाली जनता को फँसाते हैं। और अपना ठाट-बाट बनाकर इज्जतदार बनना चाहते हैं-

इस उजाले में आकर बहुत खुश हुआ,
आबरू बच गई, वाहवाही मिली,
मैंने ईमान बेचा खुलेआम जब
तब कहीं जाके यह बादशाही मिली।।
XX X X X XXXXXXXXX
ये प्रदर्शन बड़े काम की चीज है
बन गए हम तमाशा बड़े भाग्य से,
रद्दी अखबार थे कल, मगर आज कल
टक्करें ले रहे हैं, महाकाव्य से।।
अब तो विज्ञापनों का वरदहस्त है
मछलियाँ खुद चली आएँगी जाल तक
देश काफी बड़ा है, बड़े ठाट से
अपना धंधा चलेगा, कई साल तक।।

यही नहीं समाज के सफेदपोश तथा कथित अभिजात्यवर्गीय लोग साधनशक्ति, पहुँच से हीन लोगों को अपनी सुख-सुविधा, भोग-विलास के लिए यूज करते हैं। ये लोग अपने घर में उजाला करने के लिए गरीबों का चिराग भी बुझा देते हैं। इनके महलों की मीनारें ऊँची हैं, कारें हिप्पियों के समान मचलती हुई चलती हैं, इनके घर गुनाहों के अड्डे हैं, इनके होठ शराबों से धुले रहते हैं। ये किशोरी कलियों को मसलते हैं। इनके घर की मरकरी लाइट में आपानक समारोह चलता रहता है इनके घर की रोशनी भी जहर उगलती है, प्रत्येक रात हवस का ब्योरा बनकर आती है-

हम दिया भी जलाएँ तो अँधेरा पाएँ
ये उजाले के लिए हमको बुझाते ही रहे,
इसका मतलब है कि हम यों ही जिएँ और इन्हें
चन्द टुकड़ों के लिये गीत सुनाते ही रहें।।

Scanned with OKEN Scanner

सन्दर्भ:-
1. मुक्तक एवं रूबाइयाँ-देवी प्रसाद राही, पृष्ठ 24: छन्द सं0 42
2. मेरे देश जागते रहना-देवी प्रसाद "राही", छन्द सं0 5 : पृष्ठ 62
3. मेरे देश जागते रहना-देवी प्रसाद "राही" मैं हर मुश्किल में हाथ बटाऊँगा छन्द सं0 1-3 : पृष्ठ 63-64
4. मेरे देश जागते रहना-देवी प्रसाद "राही" मुझे फुर्सत नहीं है: छन्द सं0 2 एवं 4 पृष्ठ 42-43
5. कुरूक्षेत्र: रामधारी सिंह "दिनकर" सर्ग 7 : पृष्ठ 122
6. मेरे देश जागते रहना: देवी प्रसाद "राही" लेखनी हाथों में आती है। छन्द 11 : पृष्ठ 52
7. दर्द बदनाम न हो: देवी प्रसाद "राही" तुम्ही कुछ गाओ : पृष्ठ 23-24
8. दिनकर नील कुसुम-रामधारी सिंह "दिनकर" जनतंत्र का जन्म: पृष्ठ 72
9. मेरे देश जागते रहना-देवी प्रसाद "राही" अगर चमन का रंग बदला: छन्द सं0 5 पृष्ठ 38
10. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष-प्रो0 विपिन चन्द्र : पृष्ठ 268-269
11. साहित्य और संस्कृति : प्रेमचन्द्र (साखी विशेषांक अक्टूबर-दिसम्बर) : पृष्ठ 75
12. कामायनी-जयशंकर प्रसाद-सर्ग संख्या : 103-104

Scanned with OKEN Scanner